ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities

Indian Scholar

An International Multidisciplinary Research e-Journal

देवदूतम् में सांस्कृतिक राष्ट्रियता

भारती साहू
(शोध छात्रा)

डॉ. एस.एस. गौतम
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत)
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)

प्रस्तावना–

''सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा''[1]

संस्कृति मानव के आन्तरिक गुणों का समूह एवं बाह्य क्रियाकलापों का गुलदस्ता है, जिसके द्वारा उसकी आध्यात्मिक एवम् भौतिक पहचान बनती है।

भारतीय संस्कृति भोगवाद की अपेक्षा अध्यात्मवाद पर अधिक बल देती है। भारतीय संस्व ति सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श को मान्यता देती है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अमृततुल्य जलधारा से सदैव ही हमारा मानव समुदाय प्रभावित रहा है। संस्कृत कवियों ने अधिकांशत: अपनी रचनाओं में विश्वबंधुत्व और भाईचारे के भाव को निरुपित किया है तथा अनेकता में एकता के दर्शन हमारी संस्कृति में ही होते हैं। तथा सदाचरण की शिक्षा भी हमारे संस्कृत मनीषियों ने दी है।

श्री राजगोपालचारी का कथन है, कि ''किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।''

महत्त्वपूर्ण शब्द– अनायास, समग्र, सन्मार्ग, आचरण, सम्मुख, आदिगुरु, निर्वाह, दायित्व, शिष्ट, अनुभूति, भव्य, आध्यात्मिक, चेष्टा।

संस्कृति शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय करके बनता ह अर्थात् सम्यक् कृति या चेष्टा ही संस्कृति कही जा सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य की भूषणभूत सम्यक कृति या चेष्टा ही संस्कृति है। संस्कृति मनुष्य की जीवन शक्ति प्रगतिशील विचारों की श्रृंखला तथा राष्ट्रिय आदर्शों की परम्परा है लेकिन मनुष्य का प्रत्येक कार्य-व्यवहार तथा विचार संस्कृति नहीं कहा जा सकता है बल्कि जिस कार्य या विचार से किसी समाज के लोगों पर विशेष प्रभाव पड़े वह संस्कृति कही जा सकती है। संस्कृति के आश्रय से ही समाज व देश की प्रसिद्धि का भव्य निर्माण होता है।

श्री सम्पूर्णानन्द के अनुसार- संस्कृति समष्टिगत समान अनुभवों से उत्पन्नभूत पदार्थ है। एक ही जलवायु में पले, एक ही राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सुख-दु:ख को भोगे हुए लोगों के चित्तों का झुकाव प्राय: एक ही सा होगा। एक सी अनुभूतियों से आचार-विचार भी एक होंगे। अत: संस्कृति वह दृष्टि कोण है जिससे कोई समुदाय विशेष जीवन की समस्याओं पर दृष्टि निक्षेप करता है जो आज की अनुभूति है। वह कल संस्कार के रूप में अवशिष्ट रह जावेगी। यह एक

ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities
Indian Scholar
An International Multidisciplinary Research e-Journal

बहती हुई धारा है जिसमें सदा कुछ न कुछ नवीन अंश जुड़ता रहता है और कुछ विलुप्त भी होता रहता है। साथ ही कुछ किसी और रूप में भी परिवर्तित होता रहता है।[2]

किसी भी देश की संस्कृति में केवल सामाजिक,आर्थिक व धार्मिक वातावरण का ही अध्ययन नहीं होता बल्कि राजनैतिक वातावरण भी दृष्टिगत होता है। प्राचीन समय में राजा ही संस्कृति का संरक्षक माना जाता था। भारतीय संस्कृति में इसे इस प्रकार कहत थे- **यथा राजा तथा प्रजा** क्योंकि जनता (प्रजा) राजा के आदर्शों का अनुकरण करती है। अत: यदि राजा सांस्कृतिक वातावरण के प्रति अधिक रुचि रखता है, तो प्रजा अनायास ही उसमें रुचि लेने लगती है और यदि राजा राष्ट्रिय संस्कृति के प्रति उदासीन प्रतीत होता है तो प्रजा भी वैसी ही रहेगी। अत: राजा के सहयोग के बिना संस्कृति का संरक्षण संभव नहीं हो सकता है। अत: किसी भी राष्ट्र में शांति व्यवस्था के स्थापित होने पर ही स्वस्थ संस्कृति विकसित होती है।

भारत का भौगोलिक सौन्दर्य, इतना आकर्षक रहा है कि विभिन्न संस्कृतियों के लोग यहाँ भ्रमण के उद्देश्य से आये और फिर यहीं बस गए। भारत के स्थल, नदियाँ, प्रदेश, वन, हिमालय आदि को कवियों ने अपनी कल्पना शक्ति से जिस प्रकार साहित्य में सजाया है वह भारत के भौगोलिक महत्त्व के साथ सांस्कृतिक महत्त्व को भी बढ़ाता है। वेदों में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता स्वर्णिम अक्षरों में वर्णित की गई है-

वैदिक ऋषियों ने भारतवासियों से प्रार्थना की है कि हमें अपनी जाति और भाषा के भेद को भूलकर राष्ट्र की उन्नति में मिलजुल कर प्रयास करना चाहिए तभी हमारा राष्ट्र प्रगतिशील बनेगा-

जनं विभ्रति बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।[3]

इसी प्रकार पुराणों में भी भारतीय संस्कृति वर्णित की गई है कि भारत भूमि सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि यहाँ मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्मों का निर्वाह कर पुण्य अर्जित कर सकता है-

भारतं नाम यद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम्।
तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः।
एतत्प्रधानं विज्ञेयं यत्न सर्वं प्रतिष्ठितम्।।[4]

किष्किन्धाकाण्ड में राम बाली से कहते हैं, कि इधर की समग्र भूमि पर भरत का साम्राज्य है और हम लोग अपने धर्म अथवा संस्कृति के विस्तार हेतु भ्रमण कर रहे हैं। अत: अब यहाँ कोई अधर्म या अधार्मिक नहीं रह सकेगा। इस प्रसंग में राम का कथन संस्कृति के संरक्षण हेतु उपयुक्त प्रतीत होता है।[5]

भास ने अपने देश की संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए तथा सांस्कृतिक राष्ट्रियता को बढ़ावा देने के लिए जो अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है उसमें हिमालय से लेकर सागर पर्यन्त अपनी भारतभूमि के एकातपत्र शासन की कामना की गई है। प्रजाओं में सम्पत्ति के निवास तथा विपत्ति के विनाश की कामना के साथ अपने देश के शत्रुओं का संहार चाहा गया है।

इमां सागरपर्यन्तां हिमबद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः।।[6]

इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने भी अपनी सांस्कृतिक दृष्टि का परिचय देते हुए भारत भूमि का सचेतन रूप चित्रण किया है तथा पृथ्वी का मानदण्ड हिमालय जैसा जड़ पर्वत भी देवतात्मा रूप में वर्णित किया गया है-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्माहिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।[7]

ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities
Indian Scholar
An International Multidisciplinary Research e-Journal

अपनी भारतीय संस्कृति के गुणों से प्रभावित होकर महाकवि पं. सुधाकर शुक्ल ने देवदूतम् में भारतीय संस्कृति की महत्त्वता प्रतिपादित की है जो उनके राष्ट्रप्रेम को भी दर्शाता है। भारतीय संस्कृति के गुणों के वर्णन के क्रम में शुक्ल जी ने पर्यावरण सम्बन्धी तत्त्वों के माध्यम से अपने राष्ट्रिभाव को अभिव्यक्त किया है। शुक्ल जी ने पर्यावरण चिन्तन की समस्या को लोगों के सम्मुख प्रदर्शित कर अपने पर्यावरणीय संरक्षण के भावों को बताया है, ताकि समस्त जनमानस उनके विचारों से प्रभावित होकर वातावरण के संरक्षण के लिए जागरूक हो सकें और प्रदूषण की समस्या कम हो ताकि मानव जीवन सुखपूर्ण बना रहे, व्यक्ति स्वच्छ हवा में जी सके। इसी भाव से हमारे राष्ट्र की सांस्कृतिक सम्पदा सुरक्षित रह सकेगी और राष्ट्र की भौगोलिक सम्पदा की सुरक्षा हेतु जो सरकार द्वारा नियम बनाए गए हैं उनसे पर्यावरण के संरक्षण में सहयोग मिलेगा। शुक्ल जी के पर्यावरण संरक्षण संबंधो भाव इस श्लोक में अभिव्यक्त है–

शृङ्ग द्वन्द्वैर्वृत सित शिला कुट्टिमेषपनद्धे
तद्राजीवैरुपचितरुचौ चारुचित्तावदातै
विश्वग्व्याप्ते तरल–सरलै र्देवदारु–द्रुमाढयै–
र्मज्जन्नन्तर्व्रजगज–कर–प्रोप्पले पल्लवे वा।।[8]

आमोद–प्रमोद के साधन भी भारतीय संस्कृति व विकास में सहायक रहे हैं। प्राचीन समय में संगीत, घुड़सवारी, शिकार खेलना, चौपड़ खेलना आदि मनोरंजन के साधन थे। क्रीड़ा से व्यक्ति का विकास तो होता ही है साथ ही साथ इनसे हमारी संस्कृति का भी परिचय होता है। अलग–अलग देशों के अलग–अलग नृत्य वहाँ की संस्कृति भी है और मनोरंजन का साधन भी। इसी भाव से प्रेरित होकर शुक्ल जी ने देवदूतम् में आमोद–प्रमोद के कुछ अंश डाले हैं ताकि सहृदयों का हृदय ग्रंथ के अध्ययन में अधिक प्रसन्नता से लगा रहे तथा आमोद–प्रमोद के साधनों द्वारा भी राष्ट्रियता अभिव्यक्त होती है। यह भी वर्णित हो सके–

क्रीड–क्रीड व्यवहर मदम्मोहमेहि प्रसुप्तिं
गच्छ द्योतस्व च युधि जिगीष स्तुहि त्वेहि कान्तिम्।
कामं लब्धवा किमपि कलयन् कामयस्व प्रकाम–
न्तुभ्यं ह्यस्मिन्नु किमसुलभम्भो दिवो धातुजाय।।[9]

व्यक्ति को हमेशा सदाचरण करना चाहिये। यह भाव भी हमारी भारतीय संस्कृति का प्रमुख गुण रहता है। आचरणवान और शीलवान मनुष्य ही अपनी उन्नति कर सकता है तथा दूसरों के लिए अनुकरणीय होता है। इसके साथ शील के महत्व के विषय में ऐसा कहा गया है कि सुगंधित पुष्पों की महक तो केवल उस दिशा में होती है जिस दिशा में वायु प्रवाहित होती है लेकिन शील की सुगंध तो चारो ओर फैलती है। शील एवं आचरण पर तो संस्कृत कवियों ने इतना बल दिया है कि इससे संबंधित कथन साहित्य में भरे पड़े हैं। सदाचरण और शील व्यक्ति के जीवन में उन्नति के आधार है इन दो तत्त्वों के सहारे व्यक्ति विपत्ति में भी धैर्य के साथ अपना जीवन जी सकता है तथा दूसरों के लिए भी आदर्श जीवन का उदाहरण भी बन सकता है। जैसे– भारत आज सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान के लिए आदिगुरु माना जाता है और इसके भारतवासी को किसी योगी से कम नहीं समझा जाता है। आचरण एवं शील संबंधी कुछ कथन इस प्रकार दृष्टव्य हैं–

धीरसत्त्वैः सुबुद्धिभिः शीलमभ्यसनीयं तु वीतरागपदाप्तय।[10]

अर्थात् वीतरागी का पद प्राप्त करने के लिए धीर सत्त्व और बुद्धिमान् व्यक्तियों को शील का आचरण करना चाहिए।

किं कुलनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः।।[11]

ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities
Indian Scholar
An International Multidisciplinary Research e-Journal

मृच्छकटिक में विट कहता है कि कुल की प्रशंसा करने से क्या? शील ही इस लोक में एक सार है। सुक्षेत्र में लगाने पर तो काँटे वाले वृक्ष भी बहुत अच्छी तरह फैलते हैं।

इसी तरह शुक्ल जी ने भी शील एवं आचरण को श्रेष्ठ बताते हुए कहा है कि–

शश्वच्छान्तेरुपनिषदिदम्मर्मधर्मस्य पुण्यं
क्षेत्रं क्षत्रक्षपणमपि च क्षेमभूमिर्भव–श्रीः।
कर्मक्रीतैः श्रमशुचिरसैरर्जितस्यैव भोक्तृ
व्यस्तन्त्रस्तत्रिजगदभयम्भारतम्भा–रतम्भो।।[12]

प्रस्तुत श्लोक में आचरण एवं शील सम्बन्धी राष्ट्रियता दृष्टव्य है।

शुक्ल जी ने भारतीय संस्कृति के गुणों का वर्णन अपनी कृति में करके अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया है क्योंकि कर्त्तव्य परायणता भी भारतीय संस्कृति की विशेषता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की पूर्णता कर्त्तव्य निर्वाह में ही मानी जाती है। अलग–अलग क्षेत्रों में व्यक्ति के अलग–अलग कर्त्तव्य होते हैं। जैसे गृहस्थ जीवन में उसे परिवार संबंधी दायित्वों को निभाना पड़ता है और कुछ कर्त्तव्य उसके समाज के प्रति भी हैं ये कर्त्तव्य परायणता व्यक्ति को अनुशासित भी बनाती है, और श्रेष्ठ भी। क्योंकि कर्त्तव्य बोध मनुष्यों की क्षमता है पशुओं की नहीं। ज्ञान में ही हम पशुओं से भेद रखते हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने कर्म को श्रेष्ठ बताते हुए कहा है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन[13]

अर्थात् मनुष्य का कर्म करने में ही अधिकार है उन्हें फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

देवदूतम् में कवि कर्त्तव्य परायणता में भी निःस्वार्थभाव से केवल अपने परिवार या क्षेत्र विशेष को ही शिक्षा नहीं देना चाहता है बल्कि अपनी दृष्टि व्यापक करते हुए स्वयं की समृद्धि के साथ–साथ मातृभूमि की रक्षा का दायित्व भी याद दिलाता है–

नानेहासौ सकृदपि जनैरित्थमेव प्रहातुं
वेशेष्येण प्रिय–कृषिरता विश्रमन्नश्रयेयुः।
नव्यैरव्याहत कृतिधनैः साधनैश्चप्रपन्नाः
अन्नाराधाम्वदधतु भुवश्चोद्धृतौ सुप्रबुद्धाः।।[14]

हमारी भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से लेकर वर्तमान तक भी अतिथि को देवता के समान माना जाता है। तथा उसे यथायोग्य जल, भोजन, आसन की व्यवस्था की जाती है। अतिथि का स्वागत भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। अतिथि का आना सौभाग्य माना जाता था तथा यह गृहस्थों का प्रधान धर्म भी है। वेदों में तो अतिथि को निम्न प्रकार वर्णित किया गया है–

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्।
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद–व्रात्य क्वत्सीर्व्रात्योदकं
व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य
यथा ते वशस्तयास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति।।[15]

तथा अतिथि के स्वागत के पश्चात् मधुर वचनों से उसका कुशल क्षेम भी पूछना चाहिए–

स्वात्मापि शीलेन तृणं विधेय देया विहायासनभूर्निजापि।
आनन्दबाष्पैरपि कल्प्यमम्भः पृच्छा विधेया मधुभिर्वचोभिः।।[16]

ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities
Indian Scholar
An International Multidisciplinary Research e-Journal

शुक्ल जी ने भी इस गुण को अङ्गीकार करते हुए अतिथि पूजन को विशेष महत्त्व दिया है और अपने ग्रंथ में उसकी महत्त्वता प्रतिपादित की है। कमला नेहरु देवदूत के स्वागत में प्रशंसनीय शब्दों का प्रयोग करती हैं–

त्वन्देवोऽसि त्वमसि सुमनास्त्वंसुरस्त्वन्दिवौका–
स्त्वञ्चादित्यः क्रतुभुगमरस्त्वं सुपर्वास्यमर्त्यः।
गीर्वाणस्त्वन्दिविषदजरोनिर्जरा–श्चादितेयो
दैत्यारिस्त्वन्त्रिदश विबुधो लेख! वृन्दारकस्त्वम्।।[17]

इस प्रकार गृहस्थ जीवन में अतिथि सत्कार को महत्वपूर्ण माना गया है और इससे मनुष्य को पुण्य की प्राप्ति होती है तथा अतिथि के अपमान से सर्वनाश हो जाने का भी वर्णन संस्कृत साहित्य में वर्णित है। इसी गुण के साथ–साथ व्यक्ति के कुछ नैतिकता संबंधी कुछ कर्त्तव्य होते हैं जिनके न करने पर व्यक्ति को दण्ड तो नहीं दिया जाता किन्तु उनको करना आवश्यक बताया गया है ऐसे नैतिकता संबंधी राष्ट्रियता को जाग्रत करने वाले भावों को शुक्ल जी ने अपने ग्रंथ में वर्णित किया है तथा कमला जी देव से कहती है कि उस भारतभूमि का वन्दन करते हुए जाना क्योंकि वह भूमि इस प्रकार की है–

भूयो भूयः सुर! भरतभू भावनीया भवद्भि–
र्यैन्द्रस्यापि क्रतुशतजितस्यासनस्य प्रसूतिः
यत्रर्चामप्युपचितयजुः–सामगाथर्वणाम्वा–
गप्यार्याणामनिशमभवन्नादितः क्रीडितानि।।[18]

शुक्ल जी कहते हैं कि आर्यों की आदि सनातन भूमि की यही भारतभूमि है और है वेद तथा विद्वानों की विहार–वेदिका। अतः इस भारत भूमि का सम्मान करना तुम्हारा नैतिक कर्त्तव्य है। इस प्रकार इस श्लोक में नैतिकता संबंधी राष्ट्रियता दृष्टव्य है।

निष्कर्ष–

संस्कृति राष्ट्र का जीवन्त तत्त्व है। राष्ट्र या समाज की सभी उपलब्धियाँ इसके अन्तर्गत समाहित हैं। सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति सबस प्राचीन संस्कृति मानी जाती है। विभिन्न धर्मों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों के लोग यहाँ सामाजिक रूप से पूर्ण स्वतंत्र हैं। संस्कृति राजनीतिक राष्ट्रियता की संवाहिका भी कही जा सकती है।

संस्कृति शासन के नियमों, निर्देशों और राजाज्ञों को संवाहिका होती है। प्राचीन युग में सम्राट अशोक ने प्रजा के कल्याण के लिए, प्रजा के हित के लिए सड़क के किनारे छायादार वृक्ष लगवाये, विश्रामालय बनवाये और जगह–जगह राहगीरों की प्यास बुझाने के लिए कुओं, बाबड़ियों का निर्माण कराया उसी संस्कृति से प्रेरणा लेकर हमारी सरकार ने वर्तमान में सड़क के दोनों किनारों पर छायादार वृक्ष लगवाये तथा हेण्डपम्प एवम् प्याऊ की व्यवस्था की तथा यात्रियों के विश्राम हेतु प्रतीक्षालय का निर्माण भी कराया। लोककल्याणकारी राज्य में जनता के कल्याण के लिए सरकार जो प्रेरणा ग्रहण करती है उसका आधार हमारी संस्कृति ही है। जब कोई व्यक्ति परिवारवाद को अधिक महत्त्व देते हुए अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति करता है तो जनता उसके कार्यों का विरोध करती है यह संस्कृति हमें राम के शासनकाल से ज्ञात होती है कि उन्होंने प्रजा के अनुरंजन के लिए अपनी निर्दोष पत्नी सीता का भी परित्याग कर दिया।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति त्याग की संस्कृति रही है। जैसे– दधीचि ऋषि ने राष्ट्र के हित के लिए व मानव के कल्याण के लिए अपने शरीर का त्याग किया। इस प्रकार के त्यागमयी अंश हर संस्कृति में मिल जाते हैं। अतः हम किसी भी धर्म के हों लेकिन हमारी संस्कृति में कुछ न कुछ तत्त्व प्रेरणास्रोत रहे हैं। ये तत्त्व

ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities
Indian Scholar
An International Multidisciplinary Research e-Journal

सरकार को नीति बनाने में सहायता देते हैं। अत: इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृति राष्ट्र के निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

भारतीय संस्कृति में वह श्रेष्ठता है जिसके कारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) तथा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के आदर्श विस्मृत नहीं हो सकते हैं। चारों वर्ण तथा चारों आश्रम की व्यवस्था भी हमारी संस्कृति में थी। विभिन्न संघर्षों में मेल स्थापित करने की शक्ति भी इसी संस्कृति में पाई जाती है तभी तो मोहम्मद इकबाल का यह गीत आज भी प्रसिद्ध है–

यूनान मिश्र रोम सब मिट गए जहाँ से
बाकी अभी है लेकिन नामों निशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।।

संस्कृति और मानव का संबंध शरीर और आत्मा के समान माना जा सकता है। संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में ऐसा कहा गया है कि भारत का निर्माण स्वयं देवताओं ने किया है इतना ही नहीं बल्कि इस भारतभूमि पर देवता भी स्वर्ग छोड़कर जन्म लेने के इच्छुक हैं–

गायन्ति देवाः किल गीतिव ानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः मनुष्याः।।[19]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति सांस्कृतिक राष्ट्रियता की परिपोषिका रही है।

ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
UGC Approved Journal
Under
Arts and Humanities

संदर्भ–

1. यजुर्वेद 7.14
2. कवि कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति, पृ.क्र. 1, 2 (भूमिका भाग)
3. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना पृ.क्र. 69
4. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना पृ.क्र. 92
5. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना पृ.क्र. 115
6. स्वप्नवासवदत्तम 6/19
7. कुमारसंभवम् 1.1
8. देवदूतम पूर्वार्द्ध 25
9. देवदूतम पूर्वार्द्ध 8
10. नीति मुक्तावली पृ.क्र. 106
11. मृच्छकटिक 8/29
12. देवदूतम उत्तरार्द्ध क्र. 1
13. गीता 2–47
14. देवदूतम् उत्तरार्द्ध क्र. 4
15. नीति मुक्तावली पृ.क्र. 135
16. नैषधीयचरित 8/21
17. देवदूतम् पूर्वार्द्ध 2
18. देवदूतम पूर्वार्द्ध 41
19. ब्रह्मपुराण 19/25